International Journal of Sanskrit Research 2019; 5(5): 09-11

International Journal of Sanskrit Research
अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2019; 5(5): 09-11

www.anantaajournal.com
Received: 06-07-2019
Accepted: 10-08-2019

डॉ. कादम्बरी शर्मा
सहायक प्राध्यापक संस्कृत
शासकीय संस्कृत महाविद्यालय
रायपुर, छत्तीसगढ़, भारत।

Correspondence
डॉ. कादम्बरी शर्मा
सहायक प्राध्यापक संस्कृत
शासकीय संस्कृत महाविद्यालय
रायपुर, छत्तीसगढ़, भारत।

न्याय दर्शन के अनुसार प्रमाण

डॉ. कादम्बरी शर्मा

सारांश
न्याय दर्शन के अनुसार प्रमाण की व्याख्या इस प्रकार है– प्रमाकरणं प्रमाणं। अर्थात् यथार्थ ज्ञान का साधन प्रमाण है। यथार्थ ज्ञान को ही प्रमा कहते हैं। प्रमा का अर्थ है– वस्तुओं को उसी रूप में ग्रहण करना, जिस रूप में वे हैं। स्मृति को प्रमा नहीं कहा जा सकता है, क्योंकि उसमें पूर्वानुभूति रहती है। अप्रमा वस्तु के द्वारा वास्तविक स्वरूप का ज्ञान नहीं हो पाता।

मूलशब्द : न्याय दर्शन, प्रमाण

प्रस्तावना
प्रमा के द्वारा वस्तु के जिन गुणों का प्रकाशन होता है, वे वास्तव में उस वस्तु के मध्य विद्यमान रहते हैं, जैसे–घट में घटत्व। अप्रमा अवास्तविक गुणों की कल्पना करती है, जैसे– रस्सी में सर्प की कल्पना। संक्षेप में प्रमाण का अर्थ 'ज्ञान का वास्तविकता से सम्बन्धित होना' है। अप्रामाण्य युक्त ज्ञान वास्तविकता से असम्बन्धि होता है। अप्रमा के तीन रूप हैं–संशय, विपर्यय और तर्क। अनिश्चित ज्ञान को संशय कहते हैं, यथा– स्थाणुर्वा पुरुषो वा। (यह लकड़ी का खंभा है अथवा पुरुष है)। अयथार्थ ज्ञान का नाम विपर्यय है। इसमें वस्तु भिन्न रूप में प्रतीत होती है तथा देखने वाले का दृढ़ विश्वास होता है कि वह सही वस्तु का दर्शन कर रहा है। इसी को भ्रम कहते हैं। किसी बात को परोक्ष रूप से सिद्ध करने का नाम तर्क है, यथा– धुएँ को देखकर आग का अनुमान करने वाले का यह कथन कि यदि अग्नि न होती तो धूम भी नहीं होता, तर्क है।

न्याय दर्शन के अनुसार निम्नलिखित चार प्रमाण मान्य हैं–
1. प्रत्यक्ष प्रमाण,
2. अनुमान प्रमाण,
3. उपमान प्रमाण और
4. शब्द प्रमाण।

1. प्रत्यक्ष प्रमाण– यथार्थ अनुभव को प्रमा कहते हैं। प्रमा का साधन प्रमाण होता है। प्रत्यक्ष प्रमा का कारण प्रत्यक्ष कहलाता है। घटादि के दर्शन से नेत्र संयोग होने के पश्चात् 'यह अमुक वस्तु है' इस प्रकार का जो प्रमा रूप ज्ञान होता है, उसे प्रत्यक्ष–प्रमा कहा जाता है।
इस प्रत्यक्ष के दो भेद होते हैं– सविकल्पक और निर्विकल्पक। जिस प्रत्यक्ष में विशेषण अथवा नाम, रूप, जाति आदि का भी बोध होता है, वह सविकल्पक कहा जाता है, जैसे– चक्षुरिन्द्रिय से घटत्वावच्छिन्न घट का बोध होना। निर्विकल्पक ज्ञान में केवल वस्तु मात्र का ज्ञान होता है, उसके नाम, जाति आदि का ज्ञान नहीं होता।
न्याय दर्शन के अनुसार इन्द्रिय और अर्थ के सन्निकर्ष (मिलन) के छः प्रकार बताये गये हैं– संयोग, संयुक्त समवाय, संयुक्तसमवेत समवाय, समवाय, समवेतसमवाय और विशेषण–विशेष्यभाव। इनमें क्रमशः घट, तद्गत रूप, रूप की जाति (रूपत्व), शब्द, शब्दत्व तथा समवेत और समवाय सम्बन्ध गृहीत होते हैं। वेदान्त दर्शन समवाय सम्बन्ध को नहीं मानता। उसके अनुसार वस्तु और तद्गत रूप बिल्कुल एक हैं, उनमें तादात्म्य रहता है। वेदान्त दर्शन के अनुसार सन्निकर्ष केवल पाँच हैं–संयोग, संयुक्त तादात्य, संयुक्तावछिन्न तादात्म्य, तादात्म्य तथा अभिन्न तादात्म्य। अभाव को स्वीकार करने के लिए वेदान्त में न्यायदर्शन से भिन्न अनुपलब्धि प्रमाण माना गया है तथा समवाय उसके अनुसार कोई वस्तु है ही नहीं। अतः इन दोनों के ग्रहण के लिए 'विशेषण–विशेष्यभाव' सन्निकर्ष मानने की वेदान्त दर्शन को आवश्यकता नहीं रहती।

प्रत्यक्ष दो प्रकार का होता है–एक इन्द्रियों से जन्य और दूसरा इन्द्रियों से अजन्य। ज्ञान की इन्द्रियाँ पाँच हैं। मन को वेदान्त दर्शन ने इन्द्रिय नहीं माना, अतः सुख–दुःख आदि का प्रत्यक्ष इन्द्रियजन्य है। पाँचों इन्द्रियों में घ्राण, जिह्वा और त्वचा अपने–अपने स्थान पर रहकर ही अपने विषय का ज्ञान करती हैं, किन्तु कर्ण और चक्षु विषय के स्थान पर पहुँच जाते हैं और उससे (वस्तु या शब्द से) संयोग करके विषय को ग्रहण करने में सहायक बनते हैं।
वेदान्त दर्शन के अनुसार जड़ वस्तु के प्रत्यक्ष की प्रक्रिया यह है–वस्तु का चक्षुरिन्द्रिय संयोग करने पर चित्तवृत्ति उसी वस्तु का आकार ग्रहण कर लेती है। यह वृत्ति सम्बन्धी अज्ञान को नष्ट करती है। तब अपने में प्रतिबिम्बित चौतन्य के द्वारा वस्तु को भी प्रकाशित कर देती है, यथा–दीपक अँधेरे में रखे घट को प्रकाशित करने के साथ ही अन्धकार को भी नष्ट करता है।
बाह्य प्रत्यक्ष के भेद हैं– चाक्षुष, श्रावण, त्वाच, रासन, घ्राणज। सन्निकर्ष तीन प्रकार का होता है–सामान्य, ज्ञान, योगज।

2. अनुमान प्रमाण–परोक्ष ज्ञान– प्रत्यक्ष ज्ञान के बाद न्यायशास्त्र में परोक्ष ज्ञान की व्याख्या की गई है। अनुमिति, उपमिति और शब्द ज्ञान न्याय दर्शन के अनुसार परोक्ष ज्ञान हैं। इनमें अनुमिति सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है– 'अनु पश्चात् मानं ज्ञानम् अनुमानम्।'
अनुमान व्याप्ति–ज्ञान, पक्षधर्मता ज्ञान, व्याप्ति–स्मरण और परामर्श के पश्चात् उत्पन्न होने वाला परोक्ष फल है। संक्षेप में हेतु को किसी स्थान–विशेष में देखकर उसके व्यापक साध्य का परोक्ष ज्ञान अनुमान या अनुमिति है, यथा–पर्वत पर धूम देखकर उसके व्यापक साध्य–अग्नि का परोक्ष ज्ञान अनुमान है।
व्याप्ति–ज्ञान आदि प्रत्यक्ष भी सम्भव हैं तथा परोक्ष भी। इनके प्रत्यक्ष होने को दृष्टि में रखकर गौतम ने अपने 'न्याय सूत्र' में अनुमान को प्रत्यक्षपूर्वक ज्ञान (तत्पूर्वकम्) स्वीकार किया है। वास्तविकता यह है कि पक्षधर्मता आदि ज्ञान भले ही परोक्षात्मक हों, पर व्याप्ति–ज्ञान मौलिक रूप में प्रत्यक्षात्मक ही होना चाहिए, अन्यथा एक व्याप्ति–ज्ञान के हेतु दूसरे अनुमान की, उस अनुमान के अंगभूत व्याप्ति–ज्ञान के हेतु तीसरे की कल्पना की अनन्त परम्परा होने से अनवस्था दोष आ जाना निश्चित है। प्रत्यक्षात्मक व्याप्ति–ज्ञान के बाद उत्पन्न होने के कारण ही 'अनुमान' को अनुमान (अनु = पीछे होने वाला, मान = ज्ञान) कहा जाता है।

हेतु– अनुमान में हेतु महत्त्वपूर्ण है। व्याप्ति के कारण किसी स्थान–विशेष में साध्य की सत्ता प्रमाणित करने वाले साधन को हेतु कहते हैं। यह लीन–परोक्ष का ज्ञान कराने से लिंग कहा जाता है–लिंगपरामर्शोऽनुमानम्।
साध्य– वह परोक्ष तत्त्व है, जिसका अनुमान करना है। इसे व्यापक एवं अनुमेय भी कहा जाता है। उपर्युक्त उदाहरण में अग्नि साध्य है।
पक्ष– वह स्थान जहाँ की सत्ता प्रमाणित की जाती है, वह पक्ष कहा जाता है। पक्ष का दूसरा नाम धर्म है।
सपक्ष– जिस स्थान में साध्य का होना पहले से निश्चित हो, उसे सपक्ष कहते हैं। व्युत्पत्ति के अनुसार इसे पक्ष के समान होना चाहिए। दोनों ही साध्य से सम्पन्न होते हैं। दोनों में यह अन्तर है कि सपक्ष में अनुमान से पहले ही साध्य की सत्ता निश्चित रहती है, जबकि पक्ष में अनुमान के बाद ही साध्य की सत्ता का ज्ञान होता है। अनुमान से पहले पक्ष में साध्य की सत्ता में सन्देह रहता है।
विपक्ष– वह स्थान विपक्ष कहलाता है, जहाँ साध्य का अभाव सदा निश्चित हो। पर्वत पर धूम से वह्नि के अनुमान में धूम हेतु वह्नि साध्य है, पर्वत पक्ष, रसोईघर आदि सपक्ष और नदी, समुद्र आदि विपक्ष हैं।

अनुमान के दो अंग होते हैं–व्याप्ति और पक्षधर्मता। व्याप्ति के कारण हेतु के साथ सामान्य रूप में साध्य की सत्ता प्रमाणित रहती है और पक्षधर्मता के प्रभाव से साध्य का पक्ष के साथ सम्बन्ध सिद्ध हो जाता है।
पक्षधर्मता के बाद व्याप्ति की स्मृति होती है। पक्षधर्मता ज्ञान और व्याप्ति–ज्ञान के सम्मिलित रूप को परामर्श कहा जाता है।
अनुमान प्रमाण में सर्वप्रथम अनुभवात्मक व्याप्ति–ज्ञान होता है। उसके पश्चात् पक्षधर्मता ज्ञान तथा तत्पश्चात् व्याप्ति ज्ञान से उत्पन्न संस्कार का उद्बोधन रहता है। इसके पश्चात् व्याप्ति का स्मरण होता है। इसके उपरान्त परामर्श और परामर्श के द्वारा अनुमिति होती है।
अनुमिति दो प्रकार की होती है– स्वकीय तथा परकीय। अनुमान प्रमाण भी स्वार्थ और परार्थ दो प्रकार का होता है, किन्तु अपने समझने से दूसरे को समझाने में अधिक असुविधा होने से पदार्थानुमिति में उपर्युक्त तत्वों को क्रमबद्ध तर्क–वितर्क पूर्ण रूप में प्रस्तुत करना आवश्यक होता है। इसी रूप को 'न्याय दर्शन' में 'पंचावयव वाक्य' कहते हैं। 'न्याय' के पाँच अवयव–प्रतिज्ञा, हेतु, उदाहरण, उपनय तथा निगमन हैं।

प्रतिज्ञा– पर्वतो वह्निमान्। हेतु–धूमावत्त्वात्। उदाहरण– यत्र–यत्र धूमः तत्र–तत्र वह्नि, यथा–महानसम्। उपनय– तथा चायम्। निगमन– तस्मात्तथा इसलिए यह पर्वत भी महानस की भाँति वह्निमान् है।
दूसरी दृष्टि से अनुमिति के तीन रूप हैं– (प) पूर्ववत्, (पप) शेषवत् और (पपप) सामान्यतोदृष्ट।

1. कारण से कार्य की अनुमिति सघन श्याम मेघ को देखकर वर्षा की अनुमिति पूर्ववत् है।
2. युक्तिपूर्वक प्रतिषेध के माध्यम से वास्तविकता की अनुमिति शेषवत् है।
3. सामान्यतोदृष्ट अनुमिति कार्य–कारण भाव के बिना, मात्र व्याप्ति के आधार पर, एक से दूसरे पदार्थ की अनुमिति है, जैसे– पृथिवीत्व से द्रव्यत्य की अनुमिति। सादृश्यमूलक अनुमिति सामान्यतोदृष्ट है।

व्याप्ति के स्वरूप पर आश्रित दृष्टि के अनुसार भी अनुमिति तीन प्रकार की होती हैकेवलान्वयी, केवल व्यतिरेकी तथा अन्वय व्यतिरेकी।

3. उपमान प्रमाण– पूर्वनिर्दिष्ट सूचक वाक्यार्थ के स्मरण के साथ रहने वाले गौ के सदृश किसी वस्तुविशेष के ज्ञान को उपमान कहा जाता है, यथा–गवय को न जानने वाला नागरिक, किसी वन में रहने वाले पुरुष से यह वाक्य सुनकर कि जैसी गौ होती है, वैसा ही गवय होता है, वन में जाकर वाक्यार्थ को स्मरण करता हुआ गौ के सदृश किसी विशेष शरीरधारी पशु को देखता है, तब वह वाक्यार्थ के स्मरण की सहायता से गौ के सदृश किसी पिण्ड–विशेष का जो ज्ञान प्राप्त करता है, वह उपमिति का कारण होता है, उसे उपमान कहते हैं। गौ के सदृश पिण्ड–विशेष के ज्ञान के उपरान्त, यही वह 'गवय' शब्द से कहा जाने वाला पिण्ड है। इस प्रकार नाम और नामधारी के सम्बन्ध की प्रतीति उपमिति कही जाती है। यही उपमिति उपमान का परिमाण है। प्रत्यक्ष और अनुमान से सिद्ध न होने वाले तथ्य ज्ञान का साधक होने के कारण उपमान सभी प्रमाणों से भिन्न प्रमाण है। इसके नाम से ही स्पष्ट है कि इसमें उपमा–सादृश्यसाधर्म्य अथवा तुलना का बहुत महत्त्व है।

4. शब्द प्रमाण अथवा आगम– अन्य सजातीय प्रमाणों से बाधित न होते हुए तात्पर्य के विषय बने हुए संसर्ग को सूचित करने वाला शब्द प्रमाण है। अर्थात् ज्ञात पदों के द्वारा पदार्थ अर्थात् पदों के अर्थ का स्मरण होने पर असन्निकृष्ट वाक्य के अर्थ का ज्ञान होना शाब्दी प्रमा कहा जाता है। वेदान्त के अनुसार आकांक्षा, योग्यता

और आसत्ति अर्थात् सन्निधि के कारण सम्पूर्ण वाक्य से एक विशेष तात्पर्य प्रस्फुटित होता है, जो पदार्थ से भिन्न होता है। तात्पर्यार्थ और पदार्थ का बोध्य–बोधक–भाव–ज्ञान शाब्दी प्रमा है। इस सम्बन्ध का बोध कराने वाला वाक्यज्ञान है। इसी को शब्द का आगम प्रमाण कहा जाता है।
शब्द प्रमाण दो प्रकार का होता है– पौरुषेय तथा अपौरुषेय। पौरुषेय वाक्य प्रमाणित तभी माना जा सकता है, जब वह किसी आप्त अर्थात् विश्वसनीय पुरुष के द्वारा प्रयोग किया गया हो। वेदवाक्य अपौरुषेय है। यह दो प्रकार का है–सिद्धार्थ और विधायक। विषय की सत्ता सूचित करने वाला वेदवाक्य सिद्धान्त और विधि या आज्ञा की सूचना देने वाला विधायक कहलाता है। स्पंद दर्शन के अनुसार आप्त–पुरुष के वचन को शब्द–प्रमाण कहते हैं। आप्त–पुरुष उसे कहते हैं, जो यथार्थ का ज्ञाता एवं वक्ता हो। शब्द दो प्रकार का होता है–लौकिक और वैदिक। मानव द्वारा व्यवहार किया गया शब्द लौकिक कहा जाता है। इन्हें सांख्य दर्शन प्रामाणिक नहीं मानता। यह वैदिक शब्द को ही प्रामाणिक मानता है, क्योंकि वेद अपौरुषेय हैं, अतः स्वतः प्रमाण हैं। वेदमूलक होने के कारण स्मृति, इतिहास, पुराण आदि के वाक्य भी प्रामाणिक स्वीकार किये जाते हैं।

निष्कर्ष

शब्द–बोध के अन्तर्गत आये हुए 'शब्द' वो वाक्य का पर्याय समझना चाहिए। यही कारण है कि शब्द–बोध को वाक्यार्थ ज्ञान भी कहते हैं। यही शब्द–बोध अर्थात् शब्द–वाक्य से होने वाला अर्थज्ञान न्यायशास्त्र का चौथा अनुभव है। इसी का यथार्थ स्वरूप शाब्दी–प्रमा है।

संदर्भ

1. वैदिक साहित्य का इतिहास, चौखम्भा प्रकाशन, दिल्ली
2. वैदिक साहित्य एवं संस्कृति, मोतीलाल बनारसीदास, पटना
3. षड्दर्शन, मोतीलाल बनारसीदास, पटना
4. संस्कृत साहित्य का इतिहास, चौखम्भा प्रकाशन, दिल्ली
5. न्याय मुक्तावली, राजमणि प्रकाशन, इलाहाबाद
6. तर्क संग्रह, चौखम्भा प्रकाशन, वाराणसी
7. भारतीय दर्शन, ज्ञान मंडल प्रकाशन, वाराणासी
8. न्यायदर्शन, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी
9. तर्क भाषा, चौखम्भा प्रकाशन, वाराणसी